P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-4*(Part-2) December- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

कला संगीत में खयाल गायकी की बंदिश, बोली, भाषाः एक चिंतन एवं विश्लेषण

राजेश गोपालराव केलकर
अध्यक्ष,
कंठ्य संगीत विभाग,
फैकल्टी आफ परफ़ार्मिंग आर्ट्स,
महाराजा सयाजीराव यूनिवर्सिटी ऑफ बरोड़ा,
बडोदरा, गुजरात, भारत

सारांश

किसी भी कला का मर्म उसकी सर्जनात्मकता में छुपा है। कला संगीत या राग संगीत की (शास्त्रीय संगीत) सर्जनात्मक क्षमता अथाह है। साधक कि प्रतिभा, तपश्चर्या एवं गुरु के सुयोग्य मार्गदर्शन के फलस्वरूप किसी एक राग कि मर्यादित स्वरावलियों में घंटो तक अमर्याद विचरण करना किसी कलाकार या साधक के लिए सहज संभव है। फिर भी राग के खयाल गायन कि अभिव्यक्ति का माध्यम "बंदिश" तथा उसका साहित्य अत्यंत मर्यादित है। यहाँ कला संगीत के खयाल गीतप्रकार कि बंदिश तक यह शोधपत्र सीमित है। केवल तीन पंक्तियो से ले कर अधिकतम ७–८ पंक्तियों में सीमित खयाल कि बन्दिशों के माध्यम से कलाकार अपनी कल्पनाशक्ति के आधार पर किसी एक राग का विस्तार करता है। कला संगीत में ब्रज बोली हमेशा केंद्रस्थान में रही है परंतु हिन्दी, अवधी, भोजपुरी, मैथिली, राजस्थानी, मालवी, पंजाबी बोलियों का भी प्रभाव रहा। किसी भी मुख्य भाषा का विशुद्ध रूप छोडकर व्याकरण कि झंझटों, संयुक्ताक्षरों कि कठोरता से मुक्त यह मधुर बोलियाँ बंदिश के माध्यम से राग विस्तार भावाभिव्यक्ति के लिए कैसी अनुकूल एवं उपयुक्त है यह बताने का प्रयास इस शोधपत्र में किया गया है। इस शोधपत्र में 'राग संगीत' इस परिभाषा को विख्यात संगीतशास्त्री डॉ॰ अशोक दा॰ रानडे द्वारा सूचित 'कला संगीत' इस प्रकार से उल्लेखित किया जाएगा।

मुख्य शब्द : कला संगीत, ख्याल, बोली, भाषा, बंदिश।

प्रस्तावना

"गीतं वाद्यम् तथा नृत्यम् संगीतं उच्यते", अर्थात गीत, वाद्य एवं नृत्य के संयोग से संगीत साकारित होता है। संगीत कि यह व्याख्या पंडित शारंगदेव ने (१३ वीं शताब्दी) अपने ग्रंथ "संगीत रत्नाकर" में की है। डॉ॰ अशोक दा॰ रानड़े ने कुछ एक आधार पर संगीत के पाँच प्रवाह बताए हैः 1) आदिम संगीत 2) लोक संगीत 3) कला संगीत (शास्त्रीय) 4) जनसंगीत 5) धर्म–भक्ति संगीत।

परंतु परंपरागत रीति से मोटे तौर पर भारतीय संगीत को तीन विभागों में बांटा जा सकता है–

1. शास्त्रीय संगीत – स्वर, लय, राग संबन्धित नियम का महत्व तथा साहित्य गौण (गीत प्रकारः ध्रुपद, धमार, खयाल इत्यादि।)
2. उपशास्त्रीय संगीत – स्वर, लय, राग एवं साहित्य (गीत) एकसमान महत्वपूर्ण (गीत प्रकारः ठुमरी, दादरा, कजरी, चैती, शास्त्रीय संगीताधारित ग़ज़ल)
3. सुगम संगीत – साहित्य (गीत) का महत्व अधिक, स्वर–लय के लिए नियमों का बंधन अनावश्यक (गीत प्रकारः गीत, फिल्मी गीत, भजन, लोक संगीत, समूह गीत इत्यादि।)

संगीत व राग के दो प्रमुख अंग है स्वर एवं लय। भारतीय कला संगीत या राग संगीत दो संकल्पनाओं पर आधारित है –१) प्रबंध या गीत या बंदिश (स्थिर या निश्चित अंग) २) उपज, विस्तार (गतिशील अंग)।

बंदिश के विविध अर्थ है – बंधा हुआ, बंधी हुई गेय रचना, विशिष्ट आकृति में बांधना, रचना इत्यादि। बंदिश में स्वर–लय के साथ शब्द एवं साहित्य जुड़ जाता है। सुगम गीत, फिल्मी गीत रचनाएँ एक ही बार वैसी कि वैसी ही गायी और सुनी जाती है पर कला संगीत में बन्दिशें मूल स्वरूप में प्रस्तुत होने के बाद बंदिश के रागस्वरूप अनुसार सर्जनशील कलाकार उसे अपनी प्रतिभानुसार हमेशा विभिन्न ढंग से प्रस्तुत करता है। यहाँ पर राग का विस्तार या उपज शुरू होती है। कलाकार कि सर्जनात्मक यात्रा शुरू होती है।

शास्त्रीय या कला संगीत में 'बंदिश' का महत्व विशेष है। "संगीत रत्नाकर" के तृतीय अध्याय में गीत के दो प्रमुख अंग बताये है–धातु (संगीत के

अंगोपांग अर्थात आज के संदर्भ में किसी राग के नियम, स्वरांग, लय, ताल इत्यादि) एवं मातु (वाक या वाणी)। इसप्रकार संगीत का प्रत्यक्ष प्राण 'धातु' है यह स्पष्ट होता है, और 'मातु' उसका सहायक है – वह स्वयं संगीत का बाह्य आधार है। विशुद्ध शास्त्रीय गायन के लिए संगीत के सौन्दर्य के अनुकूल रचा गया काव्य अर्थात राग गायन की 'बंदिश' है। यहाँ 'बंदिश' के रूप में रामधारी सिंह 'दिनकर' या सुमित्रानंदन पंत जैसे कवियों का समृद्ध काव्य अपेक्षित नहीं है। कला संगीत में काव्यतत्त्व का स्थान गौण ही रहेगा। बंदिश रचनाकार, संगीत का जानकार होना या उसकी नायकी पर पकड़ होना अपेक्षित होता है। उसके सामने संपूर्ण राग स्वरूप खड़ा होता है। जिसकी कुछ सुंदर स्वराकृतियां रचनाकार को आकर्षित करती हैं, उसका एक अमूर्त रूप निर्माण होता है और उसे ठोस रूप बंदिश के द्वारा दिया जाता है।

मध्यकालीन अभिजात संगीत में बोली एवं भाषा

ध्रुपद के चरमोत्कर्ष के काल में पारंपारिक ध्रुपद रचनाओं का साहित्य तथा १५ वीं शताब्दी में पुष्टिमार्गीय संप्रदाय के अष्टछाप कवियों की समृद्ध रचनाओं का साहित्य अधिकतर ब्रज भाषा ही था। ब्रज भाषा ने (विशेषतः पुष्टिमार्गीय संप्रदाय के अष्टछाप कवियों के माध्यम से) अभिजात संगीत पर अपना प्रभाव जमाया था। अष्टछाप कवियों के अलावा तुलसीदास (रामायण छोड़कर, जो कि अवधी भाषा में है), स्वामी हरिदास, रसखान और मीराबाई (मेवाड़ी बोली के अलावा) के काव्यों पर भी ब्रज बोली का प्रभाव अवश्य रहा। ब्रज बोली और दूसरी बोलियों का मानों निकट का रिश्ता है। कुछ एक भौगोलिक अंतर पर ही दो विविध बोलियों से संयुक्त प्रभावित वाणी भी सुनने को मिलती है। बोलियों का अंतर्संबंध स्पष्ट हो इस के लिए हिन्दी व उसकी बोलियों से संबन्धित भौगोलिक प्रदेशों की भी जानकारी देना उचित रहेगा। मध्य, उत्तर, पश्चिम भारत के ११ राज्योमें हिन्दी का प्रभाव है और उसकी १६ बोलियां एवं उपबोलियाँ प्रचलित है। आग्रा–मथुरा–अलीगढ़–राजस्थान के कुछ जिले में ब्रज, बनारस एवं पूर्वी उत्तर प्रदेश में भोजपुरी, इलाहाबाद–लखनऊ में अवधी, इंदौर–उज्जैन के पास मालवी, राजस्थान में राजस्थानी–मेवाड़ी तो दिल्ली, मेरठ जैसे शहरों में खड़ी बोली का प्राबल्य है।

अध्ययन का उद्देश्य

स्वतंत्र भारत देश के साहित्य एवं कला जगत में सब से अधिक किसी भाषा का अगर बोलबाला है तो निश्चय ही 'हिंदी' है। दुर्भाग्य से गत शताब्दी से 'हिंदी' का जनमानस पर प्रभाव इतना अधिक पड़ा की 'बृज', 'अवधी', 'भोजपुरी', 'मालवी', 'मैथिलि', 'मागधी', 'अर्धमागधी', 'राजस्थानी' जैसी अनेक भाषाएँ एवं उनकी बोलियां कलाजगत से नष्टप्राय होने लगी और उसे बोलने वाले लोगों की संख्या भी कम हुई। परन्तु 'कला संगीत' अभी भी एक ऐसा माध्यम है जिसमे गायी जानेवाली बंदिशें में इन भाषाओँ में रची गयी और यह सिलसिला अभी भी चल रहा है। क्यों की ख्याल गायकी को पोषक भाषा तत्व इन भाषाओं में कूट कूट कर भरा है। जिस के कारण इन बंदिशों के माध्यम से रागों का संगीत अधिक निखर के सामने आता है। गत शताब्दी में अनेक नए रचनाकारों ने इन्हीं भाषाओं में अनेकों ख्याल रचे और खुद गाये और औरों से गवाए। आधुनिक पीढ़ी में भी कुछ रचनाकारों ने यह काम आगे बढ़ाया। इस लेखन द्वारा इन भाषाओं की संगीतमयता उजागर करना ही इसका प्रमुख उद्देश्य है।

खयाल कि बन्दिशों में बोली एवं भाषा

'खयाल' एक फारसी शब्द है और उसका अर्थ है 'कल्पना'। ध्रुपद शैली कि लोकप्रियता में गिरावट आने के कारण या खयाल का सहजगम्य स्वरूप आम रसिकों को अधिक तरोताजा करनेवाला लगने के कारण खयाल ने ध्रुपद का स्थान ले लिया। हालांकि ध्रुपद के बाद खयाल गायकी में भी ब्रज बोली का ही अधिक प्रभाव रहा। विशुद्ध ब्रज भाषा में आनेवाले संस्कृत प्रभाव से हटकर खयाल की बन्दिशों की बोली में कहीं न कहीं अवधी, भोजपुरी, मेवाड़ी–राजस्थानी और कहीं कहीं पंजाबी का संमिश्रण होने से खयाल कि बन्दिशों में बोलियों का रूप धारण कर लिया। जैसे कि कई बार किसी एक ही बंदिश में दो या अधिक बोलियों का प्रभाव दिखाई देता है। जिसका विवरण आगे आएगा।

बोली की संगीतानुकूलता

हिन्दी खड़ी बोली हो या अन्य कोई भी भाषा का विशुद्ध स्वरूप उसकी बोली कि तुलना में थोड़ा कठोर लगता है। ठीक उसी प्रकार हिन्दी की तुलना में उसकी बोलियाँ में लचीलापन, सहजगम्यता, माधुर्य, नादमयता, नृत्यमयता, लड़कपन, अनुरणन अधिक देखने को मिलेगा। और यही कारण है कि खड़ी भाषा कि तुलना में बोलियाँ संगीत के लिए और विशेष कर खयाल के संदर्भ में अधिक सानुकूल है।

ध्रुपद का प्राण उसके रागालाप में है बाद में बंदिश के माध्यम से केवल लयतत्त्व ही का प्रभाव रहता है। खयाल गायन में बंदिश एक छोटी सी पटकथा के रूप में होती है। जिसे हम रूपक कहेंगे। उस पटकथा का विस्तार रूपकालाप के रूप में होता है। इसमें किसी आकार या रूप केंद्र में कर ही आलापों का प्रयोग होता है। वह आकृति अर्थात खयाल कि स्वररचना या बंदिश का 'स्वरमय रूप' है। खयाल गायन में शब्द का प्रयोजन बंदिश के 'स्वरयमय' रूप का विस्तार करने के लिए है। उच्च स्तर कि काव्ययोजना यहाँ अपेक्षित नहीं है। ध्रुपद, फिल्मी संगीत, भजन, गीत – ग़ज़ल इत्यादि कि तुलना में खयाल की बंदिश बेहद मर्यादित शब्द और सामान्यतः ४ पंक्तियों तक सीमित रहती है। परंतु इन्ही बन्दिशों के माध्यम से राग का सम्पूर्ण विस्तार होता है। आलाप के हिस्से तक बन्दिशों के शब्दों की सार्थकता रहती है। तत्पश्चात लयकारी, तानें इत्यादि की प्रस्तुति के दौरान लयतत्व का प्रभाव बढ़ता है। कलाकार के कौशल दिखाने का अवसर आता है और तब शब्द, साहित्य का महत्व गौण हो जाता है। अतः बंदिश के मर्यादित साहित्य में संगीतानुकूलता होना अनिवार्य हो जाता है। ऐसी स्थिति बोलियाँ अधिक उपयुक्त सिद्ध होती है। इसके कुछ उदाहरण देना उचित होगाः

१) बंदिशः राग पूरिया धनाश्री (बड़ा खयाल)
स्थायीः अरे मन काहे को सोच करे।
अंतराः सोच किए से होत कहाँ अब,

धीरज क्यों न धरे॥

यहाँ ब्रज भाषा कि एक साधारण कविता में केवल ३० अक्षर एवं १६ शब्द है। केवल दो पंक्तियों में एक सुंदर संदेश दिया है। इसमें अधिकतर द्विअक्षरी शब्द है, केवल एक संयुक्ताक्षर है। राग के

मुख्य स्वरों पर विराम करने के लिए अकार–आकार–एकार–इकार–ओकारादि पर्याप्त स्थान है। जिसके कारण राग विस्तार करने के लिए पूर्ण अवसर है।

2. राग भूपाली के छोटे खयाल बंदिश के शब्द है, 'जब से तुमिसन लागली प्रीत नवेली प्यारे बलमा मोरे', जिसमें जबसे ('से' अवधी प्रत्यय) तुमिसन लागली ('लागली' शब्द भोजपुरी) प्रीत नवेली प्यारे बलमा मोरे (ब्रज), इस प्रकार सुंदर मिश्रण है जो कि काव्य के रूप में बिलकुल खटकता नहीं है और राग के लिए बिलकुल अनुकूल भी है। राग हमीर की बंदिश 'ढीठ लंगरवा कैसे घर जाऊं" में लंगर (शरारती बच्चे के लिए ब्रज शब्द है) और 'वा' यह भोजपुरी प्रत्यय है। तात्पर्य, रचनाकारों ने बंदिश को राग के रसानुकूल बनाने के लिए साहित्य में विभिन्न बोलियों का मिश्रण किया। मध्यकाल में कईं रचनाएँ हिन्दी–उर्दू, हिन्दी–मारवाड़ी (राग परज कालिंगड़ाः बालम म्हारा देओ कजरा) या हिन्दी–पंजाबी (हमीरः तेंडे रे कारन मेंडे रे यार) मिश्रित भी हुई है। पं॰ कुमार गंधर्व ने ब्रज के साथ मालवी का भी मिश्रण किया।
3. बन्दिशों में ब्रज बोली संयुक्ताक्षर के स्थान पर बेहद सरल शब्दो में रूपान्तरण के कईं उदाहरण मिलते है। जैसे कि स्पर्श–परस, दर्शन–दरस, क्षण–छिन, श्री–सीरी, ब्राह्मण–बामन या बमना, भोजपुरी में बामनवा इत्यादि। कठोर वर्णों को कोमल ध्वनि में परिवर्तित किया जाता है। जैसे, कंकड़–कंकर, पकड़–पकर, यहाँ 'ड' के स्थान पर 'र' का प्रयोग किया गया है।
4. मुख्य भाषा के अन्य शब्दों को भी मधुर बनाने की परंपरा उदा॰ नूपुर (नेवर), कंकड़ (कांकर, कांकरी, कांकरिया), मेघ (मेहा, मेहरवा) इत्यादि।
5. ब्रजबोली के में 'या' प्रत्यय का उपयोग वारंवार होने से भावमधुरता बढ़ती है। जैसे कि, नज़रिया, कमरिया, ननदिया, बतिया, रतिया।
6. संगीतोपयोगी अनुनासिक स्वर और उससे निर्माण होनेवाली गूंज तथा अनुरणनात्मक ध्वनि के लिए खयाल कि बन्दिशों में अनुनासिक अक्षरों का विशिष्ट रूप में उच्चारण होता है, जैसे किः चंद्रमा – चौन्द्रमा, मंद – मौन्द, वंदे – बौंदे, लंगर – लौंगर, चम्पा – चौंपा इत्यादि। ऐसे उच्चारण से अनुनासिक स्वरों में अधिक गूंज एवं अनुरणन निर्माण और सांगीतिकता निश्चित ही बढ़ती है। 'न', 'ण', 'म' इत्यादि नासिक्य व्यंजनो द्वारा अनुनासिकता पैदा की जाती है। जैसे 'मुझे मत मारो' के स्थान पर 'जिन मारो' या 'मुझ पर रंग न डारो' के स्थान पर 'जिन डारो रंग' तथा 'झनन झनन' 'सनन ननन्न' इत्यादि शब्दयोजना या तराने के बोलों में 'तोम, नितों, तनन, उदानि, दानी, तदानी' इत्यादि 'न'कारांत शब्दों द्वारा एक संगीतानुकूलता निर्माण होती है।
7. ब्रज भाषा में 'ओ' स्वर का बाहुल्य भी काफी है। उदा॰ तेरा – तेरो, मेरा – मेरो, अपना – अपनो, भया – भयो, हमारा – हमरो ई॰ 'ओ' के अलावा 'ए', 'ई', 'ओ', 'ऊ' का भी उपयोग बहुत होता है। इससे गाना के लिए उपयोगी व्यंजनों को नुकीलापन मिलता है।
8. व्यंजनों के दो प्रकार हैः १) अघोष व्यंजन दृ क, ख, च, छ, त, प, थ इत्यादि २) सघोष व्यंजन (अनुरणन नादयुक्त): ग, घ, ज, झ, द, ढ़, ण, द, ध, न, ब, भ, म, र इत्यादि। सभी स्वर 'अ, आ, इ, ई ..." सघोष व्यंजनांतर्गत आते है। बन्दिशों में सघोष व्यंजनों का उपयोग अधिक दिखाई देता है। जैसे कि राग यमन में बन्दिशें 'मोरी गगर ना भरन देत', 'मंदर मन लाये रे', राग अड़ाना में 'गगरी मोरी भरन नाही देत', राग बागेश्री में 'गोरे गोरे मुख पर बेसर' इत्यादि। तराने के शुष्क अक्षरों में भी सघोष व्यंजनों का प्रमाण में अधिक प्रयोग होता हैः दियानारे, दिर, दिम तनों, तननन इत्यादि।
9. भोजपुरी में 'ल' कार का काफी प्रभाव है। संगीत में 'ल' वर्ण का प्रयोग नादमयता के लिए विशेष किया जाता है। 'ल' अक्षर अति मृदु मुलायम है जिसे भाषाशास्त्र में द्रव्य व्यंजन कहते है। जैसे आया = आइलवा–आईला, गया = गइलवा–गइला, हुआ = भइला–भइलों या भइलवा इत्यादि।
10. ब्रज भाषा में इसी 'ल' का स्थान 'र' कार ने लिया है। जैसे काला=कारो, कारी (कारी बदरिया), डाल=डार, बादल=बादर, गला=गरवा (गरवा मैं सन लागे) इत्यादि।
11. ब्रज बोली के शब्दों कि सुंदर रचना कई बार इतनी लचीली होती है हिन्दी के किसी शब्द समूह के वर्णों कि संख्या ब्रज बोली के शब्दों में आधी हो जाती है। जैसेः करता है = करे, बरसता है = बरसे इत्यादि। इससे रागों का स्वरप्रवाह अपना मार्ग सहज पा लेता है।

यहाँ यह कहने की आवश्यकता है कि ब्रज, अवधी और भोजपुरी के अलावा पंजाबी बोली (राग रामकलीः मेंड़ा दिल लगावे तेंडे रे नाल साजन यार), उर्दू (राग श्रीः ख्वाजा मोइनूद्दीन हिन्द के वली हो), मारवाड़ी या मेवाड़ी (राग देसी तोड़ीः थे म्हारे डेरे आवो, राग धनाश्रीः थे म्हारों राजेंद्र मन मोहयो) या मालवी (राग अलैया बिलावलः लेता ज्याज्यो म्हारो ये सनेसो – पं॰ कुमार गंधर्व रचित) इत्यादि बोलियों के प्रभाव वाली भी बन्दिशें मिलती है। कुल मिलाकर हिन्दी खड़ी बोली या अन्य प्रादेशिक प्रमाण भाषाओं कि तुलना में उपरोक्त बोलियाँ खयाल गायकी कि बन्दिशों के लिए अधिक उपयुक्त सिद्ध होती है। आज भी आधुनिक रचनाकार अपनी नयी रचनाओं में इन्हीं बोलियों का प्रयोग करते है। खयाल गायन राग इन्हीं बोलियों के साहित्य में सहजता से प्रवाहित होता है। अतः खयाल कि अभिव्यक्ति के लिए यह बोलियाँ सशक्त माध्यम सिद्ध हुई है।

निष्कर्ष

भारतीय कला संगीत में काव्यपक्ष गौण और राग के नियम, व्याकरण का महत्व अधिक है। अतः गहरा काव्य या काव्यार्थ अपेक्षित नहीं है जिस से कि संगीत पर साहित्य हावी हो। खयाल कि बंदिश में सीमित शब्दों द्वारा राग के भावानुरूप संदेश देना और उसके द्वारा रागविस्तार कि संभावना होना इतना ही अपेक्षित है। इसलिए साहित्य का सौष्ठव, शब्दों का जंजाल, साहित्य कि ऊंचाईया दर्शाना उसका उद्देश्य नहीं होता है। ऐसे में बोली भाषाएँ बेहद उपयुक्त सिद्ध होती है। व्याकरण की जकड़न से मुक्त निर्बंध बोली भाषाओं कि सहजता, माधुर्य, लचीलापन, नृत्यमयता, अनुरणनात्मक शब्दसमूह राग की बंदिश को सुडौल बनाते है। शब्दार्थ नहीं जाननेवाले रसिक श्रोता भी ऐसी बन्दिशों को राग की सुंदरता के अंतर्गत सहज स्वीकार करते है। ब्रज भाषा कि अगुआई में अभिजात संगीत के सभी गीत प्रकारों में बोलियों ने १५ वीं शताब्दी से प्रभाव डाला जो आज तक कायम है।

कला संगीत उत्तर भारत के अलावा पूर्व में असम, बंगाल, दक्षिण में, कर्नाटक एवं आंध्रप्रदेश तक फैला। कहीं कहीं बन्दिशों को प्रादेशिक भाषाओं में बांधने का असफल प्रयत्न हुआ इसके बावजूद इन बन्दिशों कि मुख्य भाषा ब्रज–हिन्दी ही रही है। बन्दिशों के शब्दों से अनजान कलाकार एवं श्रोताओं ने उन बन्दिशों के माध्यम से उनके रागों का भरपूर आनंद लिया। निःशंक यह प्रभाव एवं सुंदरता खयाल कि बन्दिशों में उपायुक्त बोलियों का ही है। इन बन्दिशों के साहित्य पर हिन्दी या अन्य प्रमाण भाषा कि तुलना में बोली का ही प्रभाव संगीतानुकूलता के कारण अधिक रहा है। कम शब्दो द्वारा कलाकार के भावों को सुज्ञ श्रोताओं तक पहुंचाने इन बोलियों से सजी बंदिश सफल रही है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

Ranade, Ashok DaA Sangeet VichaarA Mumbai, Popular, 2009-

Haldankar, SA S-, RaspiyaA Mumbai-

Magriel] Nicholas and Lalita du PerroA The songs of Khayal (Part I & II) New Delhi Manohar, 2013-

Bhatkhande, Vishnu NarayanA Kramik Pustak Malika (Part I to VI)

Phatak, KiranA BandishA Mumbai Sanskar Prakashan, 2010-

Athavale] VA RA NaadchintanA Mumbai Sanskar Prakashan] 2008-

Sangoram, ShrirangA Aaswadak Sangeet SameekshaA Pune Rajhans Prakashan] 2003

Patwardhan, SudhaA Smaran SangeetA Pune Dilipraj Prakashan, 2013-

Deshpande] Vamanrao, Sangeet Kala Vihar, Miraj ABGMV, 1940-